संत रविदास

15 वीं शताब्दी के घोर **तिमिराच्छन्न** युग में भारत के ऐतिहासिक धरातल पर अनेक संत महापुरूषों का अवरतरण हुआ। इनमे संत रविदास का नाम अग्रगण्य है। रविदासजी उत्तर भारत के प्रतिष्ठित संत स्वामी रामनंद के प्रसिद्ध 12 शिष्यों में एक थे।

संत रविदासजी का आविर्भाव संभवत: विक्रम संवत् 1471 की माघ या शुक्ल पूर्णिमा रविवार को बनारस के निकट 'मांडूरगढ़ नामक स्थान पर चमार जाति में हुआ था। उनके माता-पिता का नाम क्रमश: रघु तथा करमा देवी था। कहा जाता है कि चमार कुल मे उत्पन्न इस नवजात शिशु ने तबतक अपनी माता का स्तनपान नहीं किया जबतक रामानंदजी ने आकर उनके माथे पर अपना हाथ नहीं रखा।

बाल्यकाल से ही रविदास की प्रवृति आध्यत्मिकता की ओर थी। इससे उनके माता-पिता चिंतित हो उठे। उन्होंने उन्हें आध्यात्मिकता की ओर से हटाने के लिए उनका विवाह लोना नामक कन्या से करा दिया। फिर भी उनके व्यवहार में कोई परिवर्त्तन नहीं आया। अंत में तंग आकर उनके पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया। किंतु रविदासजी ने बिना कुछ प्रतिरोध किए संतोषपूर्वक सब कुछ स्वीकार कर लिया। वे आजीवन जूते बनाने का अपना वंशानुगत पेशा करते रहे। उनकी आमदनी बहुत कम थी, फिर भी वे उसी में संतुष्ट रहकर भगवद् भक्ति में मग्न रहते थे।

रविदासजी के शिष्यों में मीराबाई, झालारानीख राजा पीपा जैसे राजघराने के लोग भी थे किंतु उन्होंने कभी उनसे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कोई भेंट स्वीकार नहीं की।

रविदासजी के समकालीन संत कबीर साहब जहाँ करारी करनेवाले एक अक्खड़ संत थे वहीं रविदासजी विनम्र निवेदन करनेवाले एक शांत और कोमलचित्त महात्मा थे।

उनकी बढ़ती ख्याति से ब्राह्मण वर्ग तिलमिला उठे और उनका कड़ा विरोध किया, किंतु उनकी सच्ची भगवद्भक्ति और भगवद्प्रेम के सामने ब्राह्मणों को अपने कर्मकाण्ड की निस्सारता स्वीकार करनी पड़ी।

कहा जाता है कि एक बार झाला राजी के निमंत्रण पर रविदासजी चित्तौड़ गये। उनके आगमन के उपलक्ष्य में एक भंडारे का आयोजन किया गया, पर चित्तौड़ के ब्राह्मणों ने एक चमार के साथ बैठ कर भोजन करना अस्वीकार कर दिय। आखिर उन्हें कच्चा सीधा दे दिया गया, जिससे वे अपनी रसोई अलग तैयार कर अपनी अलग पंक्ति में बैठकर भोजन कर लें। पर जब ब्राह्मणों ने अपनी रसोई तैयार कर ली और अपनी अलग पंक्ति में बैठ कर भोजन करना शुरू किया तो उन्होंने देखा कि प्रत्येक दो ब्राह्मणों के बीच एक रविदास बैठे है। इस कौतुक को देखकर ब्राह्मण अत्यंत बिस्मित और लज्जित हुए तथा उन्हें अपने जाति-अभिमान की व्यर्थता का बोध हुआ।

बहुत से लोग अपनी कुलीनता तथा अमीरी के अंहकार में पड़कर संतों की आध्यात्मिक देन से वंचित रह जाते है।

राजा पीपा एक वैभवशाली क्षत्रिय नरेश थे। रविदासजी की प्रसिद्धि सुनकर वे उनके पास जाना चाहते थे किंतु एक चमार के पास जाने में उन्हें संकोच होता था। एक दिन वे चुपके से रविदासजी की झोपड़ी में जा पहुँचे और पहुँचते ही उन्होंने रविदासजी से नामदान के लिए बिनती की। रविदासजी उस समय चमड़ा भिगोने के कुंड से पानी निकाल रहे थे।

उन्होंने उसी कुंड के पानी को लेकर राजा से कहा "राजा। ले यह चरणामृत पी ले।" राजा के मन में झिझक हुई किंतु वह स्पष्ट इन्कार न कर सके। अत: हाथ आगे करके राजा ने अपने चुल्लू में पानी ले तो लिया पर, रविदासजी की आँख बचाकर उसे अपने कुरते की आस्तीन से गिरा दिया। रविदासजी इस बात को ताड़ गए परंतु उन्होंने कुछ कहा नहीं। राजा जल्दी से घर लौट आया और धौबी को बुलाकर आदेश दिया कि आस्तीन के दाग को छुड़ाकर उसे अच्छी तरह धोकर लाए। धोबी कुरते को घर ले गया और अपनी लड़की से कहा कि वह दाग को मुँह में लेकर चूसे ताकि दाग निकल जाए। लड़की छोटी थी, वह दाग चूसकर थूकने के बजाए निगलती गयी, जिससे उसका आंतरिक ज्ञान खुल गया और ऊँची आध्यात्मिक बातें करने लगी।

धीर-धीरे यह बात पूरे शहर में फैल गयी। राजा पीपा यह सुनकर जब धोबी की लड़की के पास आया तो उसने बतलाया कि किस प्रकार राजा के कुरते के दाग को चूसने से उसे आंतरिक ज्ञान प्राप्त हुआ। यह सुन राजा पीपा को घोर पश्चापाप हुआ। वह दौड़कर रविदासजी की झोपड़ी में जा पहुँचा और उनसे पुन: चरणामृत देने की प्रार्थना की । इस पर रविदासजी ने कहा, "राजा, वह कुण्ड का पानी नहीं था, अमृत था। मैंने सोचा, मैं रोज पीता हूँ आज राजा भी पी ले किंतु तुने उसे चमड़े का पानी समझकर घृणा की और उसे कुरते में गिरा दिया। अब मैं तुझे नाम की दीक्षा दूँगा। कमाई करके इस दौलत को प्रकट कर लेना।"

इस प्रकार संत रविदासजी एक उच्चकोटि के संत थे। कहा जाता है कि 1535 ई. के लगभग वे केवल अपना चरण-चिन्ह छोड़कर जो परंपरा के अनुसार स्मारक के रूप में आज भी चितौड़ में सुरक्षित है, सदा के लिए इस संसार से विलीन हो गए।

उपदेश:-

1 परमात्मा का नाम ही सच्चा पारसमणि है जो बड़े से बड़े पापी को भी संत बना देता है। और मरणशील मनुष्य को अमर कर देता है।

2. एक ही परमात्मा की संतान होने के नाते जन्म से सभी मनुष्य बराबर है। उपने अच्छे या बुरे कर्मो के द्वारा ही हम बड़े या छोटे बनते हैं, किसी जाति, धर्म या परिवार में पैदा होने के बल पर नहीं।

3. मन में सच्चाई और संतोष रखो और सबकी सेवा में लगे रहो। सेवा ही सबकुछ देती है, सेवा को कभी नहीं त्यागना चाहिए।

4. सच्चे धर्म का पालन करने में ही सच्चा सुख है, धन संग्रह करने में दु:ख का घर है।

5. मंदिर और मस्जिद में शीश झुकाने की आवश्यकता नहीं, जिसके लिए शीश झुकाना है, वह परमेश्वर तो सभी जगह विद्यमान है।

6. जीवों की हत्या न करो, जीव ब्रह्म के सम्मान हैं। करोड़ो गौएं दान करने पर भी जीव-हत्या का पाप नहीं छूटता।